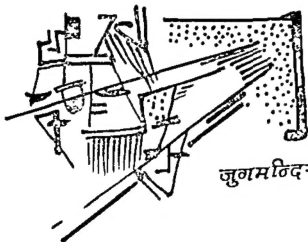


इस पुस्तक के प्रकाशन के लिए राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर
से पन्द्रह सौ रुपये का आर्थिक अनुदान प्राप्त हुआ।
अकादमी के प्रति आभार



धरती प्रकाशन
गंगाशहर, बीकानेर

दर्पण के बिम्ब



जुगमन्दिर तायल

प्रकाशक : धरती प्रकाशन, गंगाशहर, बीकानेर (राजस्थान) / मुद्रक : एस० एन० प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32 / संस्करण : प्रथम, 1984 / आवरण : सल्लू / मूल्य : बीस रुपये मात्र

DARPAN KE BIMBA : Jugmandir Tayal Price Rs. 20.00

कहीं से
कोई एक अर्थ आता है,
पुराने शब्दों के चेहरे
चमका जाता है,
धूप भरे
नये-नये बिम्ब
मन-दर्पण में उतार जाता है।

क्रम

पहला गीत / 9

अर्पण / 10

वटवृक्ष / 12

प्रबोधन / 15

जिन्दगी / 17

कस्बे की ओर / 19

भीड़ / 21

शहर / 22

शिरीष गन्ध / 24

शाम / 25

एकरसता / 27

सोया शहर / 29

सुबह / 31

किरन-सखी / 33

गांव की सुबह / 35

धूप / 36

क्या होता है / 38

वसन्तागम / 40

हसते दिगन्त / 42

वसन्त गीत / 44

पछवा / 46

पलाश / 47

अमलतास / 48

बदली की दोपहर / 49

मेघ / 51

सावन की सुबह / 53
वर्षा के बाद शहर / 54
अंकुर का गीत / 56
शरद की रात / 58
उजली रात / 59
कोहरा / 61
हेमन्ती दोपहर / 62
आवारा हवा / 63
शिशिर की दोपहर / 65
शिशिर यात्रा / 67
कोई हवा / 68
बहुत दिनों के बाद / 69
प्रेम / 70
उचटा मन / 71
दोपहर / 73
गुलमोहर / 75
गन्ध भरे तीर / 76
शाम का गीत / 77
रात / 79
साथ / 80

पहला गीत

पहला यह गीत
उन सबके नाम;
जिनको यकीन है
नयी रीति-नीति में,
जर्रे-जर्रे से फूटते
सहज मुक्त गीत मे।
पहला यह गीत
आये उन सबके काम;
गड्ढों को पाट जो
रास्ता बना रहे,
नये-नये बिम्बों से
गीत को सजा रहे
पहला यह गीत
उन सबके नाम।

अर्पण

रोज सुबह
जो पूरब में उग
काली छाया दूर भगाता,
कली-कली को गरमा-गरमा
चटका-चटका फूल बनाता,
उस सूरज को
शब्द समर्पित।

रोज सुबह
जो पूरब में खिल
किरनों का अमृत बरसाता,
धूल भरे अनजान पथों में
और पहाड़ी चट्टानों पर
रंग-रंग के चित्र बनाता,
उस सूरज को
शब्द समर्पित।

रोज सुबह
जो हर घर आगे
चमकीले कालीन बिछाता,

घुटी अँधेरी गलियों में घुस
बन्द किवाड़ों को खटकाता,
मुदी पलक को खोल जगाता,
उस सूरज को
शब्द समर्पित।

वटवृक्ष

मैं वटवृक्ष हूँ।

खुले आकाश में
ऊपर ही ऊपर उड़ती है
हवा के कन्धों पर
सूरज की बेटी धूप,
ऊँचे से ऊँचा उठ
उसे रोक
जीवन-वह्नि मैं लेता हूँ,
धरती माँ की अँधियारी गोद में
छुपी रहती है मिट्टी के ढेले में
जल की एक बूंद,
नीचे से नीचे उतर
हाथ बढ़ा
जीवन रस पीता हूँ।
मेरी शाखों पर
कितने देशों के पक्षी बसेरा लेते हैं,
मेरे पत्तों संग
कितने देशों की हवाएँ खेल करती हैं,

मेरी जटाएँ
कितनी वर्जन-रेखाएँ तोड़ बढती है,
मेरे तने के पहेलू
कितने थके कन्धों को सहारा देते है।

मैं नश्वर हूँ
और अनश्वर भी;
हर क्षण मरता हूँ
शाखाएँ सूख जाती है,
मै हर शताब्दी मे जिन्दा हूँ
जटाएँ पृथ्वी मां का रस पी
नया वटवृक्ष बन जाती है।

मेरे बीज
हवा की लहरो संग उडकर
कितनी अज्ञात दिशाओं में
कितने वटवृक्षों को जन्म देते है,
मेरी शाखों से उड़े पक्षी
कितने अनजान नगरों में
मेरी कथा कहते है।

मैं वर्तमान हूँ,
भूत और भविष्य भी,
पीले सूखे पत्तों की खाद
जीवन-शक्ति देती है,
पत्तो से ढँके मेरे लघु फलों मे
भावी वटवृक्षों की जिन्दगी पलती है;
धूप, हवा, जल, मिट्टी मुझे बनाते है
इनसे परे मैं नही हूँ,
मैं धूप को शीतल करता हूँ

हवा की गति-दिशा बदलता हूँ
जल को गन्दा करता हूँ

मिट्टी को उर्वरा बनाता हूँ
धूप, हवा, जल, मिट्टी का
सिर्फ समुच्चय मैं नहीं हूँ।

पृथ्वी माँ मुझे जन्म देती है
माँ की शक्ति मैं बढ़ाता हूँ,
मैं सिर्फ वर्तमान नहीं हूँ
वर्तमान से बनता हूँ
वर्तमान को बनाता हूँ।
मैं वटवृक्ष हू।

प्रबोधन

बढ़ता चल
ओ मेरे मन
तू बढ़ता चल।

राह बहुत अधिक टेढ़ी है
साँसें थोड़ी ही बाकी,
विश्वास नहीं मंजिल पाने का;
फिर भी चलता चल
ओ मेरे मन
तू चलता चल।

खो जाये पथ तेरा शायद,
झाड़ों का गहरा जंगल
लील जाये तुझको भी शायद,
मंजिल पाने का सपना तेरा,
संभव सपना ही रह जाये;
फिर भी पथ दलता चल
ओ मेरे मन
तू दलता चल।

आगे-आगे बढ़ते जाकर
छोड रहा पद-चिन्ह
राह पर जो,
आने वाले उनसे लाभ उठायेंगे;
तेरे पथ को
आगे और बढ़ायेंगे;
मुश्किल चाहे बहुत अधिक है
फिर भी पथ गढ़ता चल
ओ मेरे मन
तू गढता चल।

जिन्दगी

पहाड़ों के पीछे
बसे हुए हैं गाव,
पहाड़ो के पीछे
फैले हैं खेत।

पहाड़ों के पीछे है
कुएं-बावड़ी
खेतों के बीच बहते धोरें,
पहाड़ों के पीछे है
नीम-कीकर
केले के गाछ लम्बे गोरे;

पहाड़ों के पीछे
आदमी पत्थर काटता है
घर उठाता है,
पहाड़ों के पीछे
आदमी खेत जोतता है
जौ-चना उगाता है;

पहाड़ों के पीछे

औरतें गीत गाती है
बच्चे झगड़ते है,
पहाड़ों के पीछे
बेटियाँ विदा होती
बाप आँख पौछते है,

पहाड़ो के पीछे
पीपल में कोंपल फूटती है
हवा सरसराती,
पहाड़ों के पीछे
खेतों मे बाल झूमती है
ओढ़नी फरफराती;

पहाड़ो के पीछे
रास्ते है
रेतीले, टेढे-मेढ़े
पहाड़ों के पीछे
जिन्दगी के दिन है
अनगढ़, सीधे उल्टे।

कस्बे की ओर

एक हरा रास्ता
जाता है पहाड़ की ओर।

राह में मिलता है
एक छोटा कस्बा,
धुले हुए मकान;
तंग, लम्बे बाजार
चमकीले कपड़े, मिठाई, खिलौनों से
सजी हुई दूकान;

कस्बे के पीछे
एक तालाब
सुनता हुआ पहाड़ी झरने का शोर;
कस्बे की ओर
जाता है एक हरा रास्ता।

सूरज से पहले
लोग निकलते हैं
आटा, बासी रोटियाँ बाँटते हुए;
पुराने मन्दिर की घंटी बजती है
धुंधलके को चीरते हुए;

बच्चों को पुचकार
पलस्तर झड़े कँगूरों को चमकाती
उगती है खिली-खिली भोर;
पहाड़ी की ओर
जाता है एक हरा रास्ता।

दूध भरी गाय लौटती है
रुनझुन धीरे-धीरे,
छप्परों से आसमान की ओर
धुएँ के सर्प उठते है धीरे-धीरे;
लालटेन की पीली रोशनी के पास
बाँधती है लोगों को
बीते जमाने के किस्सों की डोर,
जाता है एक हरा रास्ता
पहाड़ की ओर।

भीड़

भीड़-भीड़-भीड़
जिन्दगी का एक रूप
हर तरफ—हर तरफ।
वृक्षों पर चिड़ियाँ
कमरों में बच्चे
नल पर बर्तनों की झनझनाहट;
छतों पर कपड़े
सड़कों पर लोग
रोजगार दफ्तरों में छटपटाहट;
कसमसाहट एक लगातार
भेंट मिली भीड़ से अनूप
जिन्दगी का एक रूप
भीड़-भीड़-भीड़ सब तरफ।

सुबह-सुबह शोर
दोपहर में बेचैनी
शाम को थकान,
एक लम्बी कड़वाहट दिन
रात अगली सुबह के लिए परेशान;
घिरे घुटे कमरों की कैद नहीं
चाहता हूँ
शांत, खुली-खुली धूप
सब तरफ—सब तरफ।

शहर

कितनी-कितनी औरतें
कितने-कितने आदमी;
भागती है औरतें
दौड़ते है आदमी।

आग लगी है चारो ओर,
कान फोड़ता तीखा शोर,
हर नुक्कड़ बैठे है चोर,
कैसे घर पहुँचेंगे अब
पूछती है औरतें
सोचते है आदमी।

सभी रोशनी झूठी है,
मुसकाने सब छूछी है,
छलनाएँ ही ऊँची है,
कहाँ मिलेगी सच्चाई
ढूँढती है औरतें
खोजते है आदमी।

कुण्ठा अजगर खोच रहा,
विष से साँसें सींच रहा,
मृत्यु-पाश में भीच रहा,
जिन्दा कौन बचेगा कल
काँपती हैं औरतें
हाँफते हैं आदमी।

शिरीष गन्ध

शिरीष ने
फिर गन्ध-बाण छोड़े।
कन्नू रिक्शा वाले की
पिंडलियों में दर्द है;
कन्धे पर बोझ जो सँभालता
चेहरा उसका जर्द है।

शिरीष ने
कवियों के मन मोड़े।
गेहूँ की ढेरी आगे
लोगों की भीड़ है,
काँपती टाँगें, पंजों में नसें उभरी
झुकी हुई रीढ़ है।

शिरीष ने
संयम-सेतु तोड़े।
बोझ दबे ट्रैक्टर
भर्राते दौड़ते;
नख से शिख तक को सिहराती
डीजल गन्ध छोड़ते।
शिरीष गन्ध
चरते फिरते घोड़े।

शाम

धीरे-धीरे आसमान से
उतर रही है शाम,
आसमान से उतर सड़क पर
टहल रही है शाम।

बाजारों में भीड़ दौड़ती
भारी भागम-भाग,
सुलग उठी क्या शहर बीच में
कोई दुर्धष आग ?
यहाँ पार्क में एक बेंच पर
गंधों में डूबी मनमौजी
पसर रही है शाम।

काँचघरों में पुतले हँसते
होंठों पर निर्जीव हँसी;
छली दिखावों के गह्वर में
नये चेतना कूद फँसी;

एक चील संग
ऊँची छत पर,

आसमान को भर आँखों में;
पंख तोलती शाम।

राजपथो पर रोशन उत्सव
अँधियारा गलियों के बीच;
दैन्य-पाश में आशा जख्मी
उठते पाँव खींचती कीच;

खिन्न उदास
शिथिल कदमों से
आसमान में साँझी रचती
लौट रही है शाम।

एकरसता

हर रात अँधेरे में
चाकू सा तीखा
चुभता है प्रश्न एक
आज मैंने क्या किया ?
वैसी ही सुबह होती
चाय और नाश्ता,
वैसा ही नहाना, खाना, दफ्तर का रास्ता;
दफ्तर में वही-वही
अर्थहीन बातें,
वैसा ही हँसी-मजाक, साहब की डाँटे;
पाँच बजे दफ्तर से
थके पाँव लौटना,
बीत गया यह दिन भी, घबरा कर सोचना;
पीली मरती हुई साँझ में,
ब्लेड सा धारदार
काटता है प्रश्न एक
आज मैं कहाँ जिया ?
घर वैसा ही शोरगुल
बीबी से लड़ाई,

वैसा ही पश्चाताप, वैसी ही उबकाई;
अँधेरे के साथ-साथ
वैसी ही घबराहट,
वैसा ही दिल डूबना, वैसी ही झुँझलाहट;
खालीपन में डूबकर
शब्दहीन रोना
प्रश्नों से घिरे हुए, चेतना का खोना;

हर सुबह
सूरज की पहली किरन साथ
गंधक सा ज्वलनशील
जलाता है प्रश्न एक
जिन्दगी को अर्थ मैंने क्या दिया ?

सोया शहर

सोया है सारा शहर
रोशनी जलती है।

सपनों के पलने मे सोया
कोलाहल खामोश;
सभी राजपथ बँधे नीद के
जादू मे वेहोश;
गली-गली में
सिर्फ अकेली
रात ही जगती है।
सोया है सारा शहर।

अट्टहासो की गूँज शेप है
बाकी सव कुछ शान्त,
यांत्रिक मुसकानो की जगमग
सोयी है अव श्रान्त;

नुक्कड़-नुक्कड़
शकाओं की
धुन्ध भटकती है।
सोया है सारा शहर।

गुँजलक डाले भारी अजगर
डँसता सब कुछ मौन;
कुत्ते सिर्फ तोड़ते गुँजलक
भौंक पूछते 'कौन';

सावधान हो
सन्नाटे में गूँज बस उठती है;
सोया है सारा शहर
रोशनी जलती है।

सुबह

सुबह-सुबह जल्दी घर से निकलना;
खामोशी के सागर में
तैरते हुए बढ़ना।
बिजली के खम्भे खामोश खड़े
रात के पहरेदार;
दूर मन्दिर से आरती की गूंज
आती है बार-बार;

धीरे-धीरे जबड़े चलाती
गाय एक
बैठी अँधेरे में
रोशनी का इन्तजार;
कुत्ते बैठे यहाँ-वहाँ
कान उठाये जागरूक
शेष अभी अंधकार;
अँधेरे को चीरता
ट्रक एक घर से निकल गया;
जल्दी उठकर पढ़ने का
होस्टल में घंटा बज गया;

पार्क में
घास के मैदानों में चहल-पहल
बूढ़ों का शिकायत-खाता खुल गया;
दौड़ के मैदान में
जवान पिंडलियों में हरकत
उग रहा
एक और दिन नया,

सुबह-सुबह
जल्दी घर से निकलना,
आसमान से उतरती
सब कुछ में घुलती
सब कुछ को उजागर करती
धुली रोशनी में लौटना।

किरन-सखी

सुबह सुबह कमरे में
एक किरन आयी।

दरवाजे थे बन्द
खिड़की से झांकी,
अँधियारे की छाती पर
बरछी थी बांकी;
चिड़िया की गीत लहरी
फिर से उठायी।
एक सखी आयी
सुबह-सुबह कमरे में।

काला था चित्रपट
नये-नये रूप रचे;
सब कुछ था एक रंग
कितने ही रंग भरे;
सुबह-सुबह एक तूली
रंग में डुबोयी।
एक किरन आयी
सुबह-सुबह कमरे में।

अकेला था रात भर
पीड़ा में रात ढली;
कुठा के पाश कटे
सुबह जब मशाल जली;
सुबह-सुबह कमरे में
सखी मुसकरायी
एक किरन आयी
सुबह-सुबह कमरे में।

गांव की सुबह

सुबह हो गयी ।
मिट्टी की दीवारें
छप्पर चमक उठे;
किरनों में रेतीले
दगड़े दमक उठे;
लो ! अंधकार पर
उजियाला हुआ जयी ।

गायें रंभाती
बछड़े हैं कूद रहे;
काले कोनों में
किरनों के तीर धँसे;
गोरे हाथों
पनघट की चकली घूम रही ।

रंग भरे खेतों में
चुपचाप किसी ने;
घोला पोखर में
है सिन्दूर उसी ने;
मेड़ों पर किरनें फैली
अब नयी-नयी ।
सुबह हो गयी ।

धूप

धूप
बहुत काम करती है।

रात-रात
        रचता है अंधकार
सड़कों पर, मकानों-पुलों पर
        काले धब्बे,
पतली, सुनहरी कूची से
मिटाती है।

अस्पताल की इमारत में
पलंग पर
कम्बल ओढ़, घुटने पर सिर टिका
सूरज की प्रतीक्षा करता है
        एक पीला लड़का
        एक थरथराता वुड्ढा
खिड़की से घुस
ठोडी पर हाथ रख गरमाती है।

पथरीले ढलानों
अनगढ़ काली चट्टानों

पर बिछते हैं,
छज्जे-मुंडेरों
आंगन के तारों पर झूलते है
गीले कपड़े
स्पॅंज से सोख-सोख
चमकाती है।

पार्क के कोने में
उदास होते छोटे फूल,
पीपल की ऊँची फुनगी पर
खामोश बैठी छोटी चिड़िया,
ऊंची इमारत की बुर्जी के पास रुक
कहती है—
'कल फिर आऊँगी
घबराना नहीं'
समझाती है।

धूप
बहुत व्यस्त रहती है।

क्या होता है

मैं कह नही सकता
कि क्या होता है ?

कही से कोई एक हाथ आता है
सब कुछ बदल जाता है,
यहाँ आम के पत्तों में बोरों के गुच्छ,
वहाँ सेमल की डालों में
लाल-लाल फूल टाँग जाता है,
जब कि पलाश
सूखे झुके कन्धो पर पतझड ढोता है ।

मैं कह नही सकता
कि क्या होता है ?
कही से कोई एक झोंका आता है,
खिड़कियो के पल्ले
यादों भरे कलैण्डर के सोये पन्ने
फड़फड़ा जाता है;
जबकि मन विस्मृति-सुख में डूब
गहरी नीद सोता है ।

मैं कह नही सकता
कि क्या होता है ?
कही से कोई एक गन्ध आती है,
लीक चलते कदमों को बहका जाती है
अनजान पगडंडियों को राह दिखा जाती है;
जबकि चित सोच-सोच
भावी सफलता के बीज बोता है ।

मैं कह नहीं सकता
कि क्या होता है ?
कहो से कोई एक अर्थ आता है,
पुराने शब्दों के चेहरे चमका जाता है,
नये-नये बिम्ब आंखों में उतार जाता है:
मन जबकि वसन्त-धूप में पकते
सुनहरी बालों भरे खेत ऊपर
उड़ता तोता होता है ।

बसन्तागम

गन्ध बहाता
केश उड़ाता
कहीं दूर का शीत पवन
आया मेरे पास ।

कहीं दूर
अनजान पथों में
सेंमल के पत्ते पिपराते होंगे
डालों में फूल फूटते होंगे;
कहीं दूर
आम्र-बौर पर
मधुलोभी मँडराते होंगे;
बसन्त प्रतीक्षा-रत ढाँकों के
कितने वस्त्र छूटते होंगे;
किन्तु मेरे पास सिर्फ हैं
काँटों घिरे गुलाब ।

सुनसान राह के किसी छोर पर
सिरस डाल में
बाजे बजते होंगे;

किसी वृद्ध-वट वृक्ष छाँह में
पीले पत्ते टूट बिखरते होंगे;
पवन लहर संग उड़ते होंगे;
कितनी कोमल डालों में
बैंगनियाँ रेखा खिचती होंगी;
धूप चमकती
हँस-हँस झुकती
गिरती
गेहूँ वालों की भूल भुलैया में
पवन लहरियाँ घिरती होंगी;
और यहाँ है मुझे घेरते
कोलाहल
धुआँ
ऊबे, थके हुए चेहरे
बँधे-बँधे मर्यादित स्वर
अँधियारे आवास।

कही दूर का शीत पवन
आया मेरे पास।

हँसते दिगन्त

आसमान साफ हुआ
बीता हेमन्त।
बीता हेमन्त। बीता हेमन्त॥

सुबह-सुबह धुन्ध नहीं
सूरज की धूप
फैलती है सड़कों पर
चमकाती रूप;
चिड़ियाएँ गाती हैं
कोहरे का अन्त।
कोहरे का अन्त। कोहरे का अन्त॥

दौड़ रहा दूर-दूर
शीतल पवन,
सपनों को खोजता
दौड़ रहा मन;
खेतों के रोम खुले
आया बसन्त।
आया बसन्त। आया बसन्त॥

पश्चिम को देर से
लौटती है सांझ,
रुक जाती सुनने को
फूलों पर बजती है
गीतों की झांझ;
घाटियों में रंग घुलते
हँसते दिगन्त।
हँसते दिगन्त। हँसते दिगन्त ॥

वसन्त-गीत

पकने लगी अब धूप
वसन्त के दिन आये।
वसन्त के दिन आये।।

फूलो के गुच्छ झड़े
पकते है खेत;
पौधों के बीच खड़े
लकड़ी के प्रेत;
सरसों में अलसी की
शोभा अनूप,
खुशियों के दिन आये।

जगह-जगह कुंजो में
सुलगी है आग,
शाखों पर खेला यह
किसने है फाग?
आमों की डाल-डाल
सौरभ के घूट;
मस्ती के दिन आये।

बहती है गन्ध भरी
हवा दूर-दूर;
लहरों में नाचते
भरे-भरे पूर;
चमकीले दर्पण मे
उभरे है रूप,
यादों के दिन आये।

पकने लगी धूप
बसन्त के दिन आये।

पछवा

पछवा-संग
बहती सरसो की गन्ध
नासापुट वन्द करो।
नस-नस में भर जायेगी,
सबको मदहोश
वना जायेगी;
पछवा-संग
बहती है मादक-गन्ध
नासापुट बन्द करो।
ऊपर तो दूर-दूर नीला है;
धरती पर
पीला ही पीला है;
पछवा-संग
उड़ता अजव नशीला रग
पलकों को वन्द करो।
फूल-फूल से पवन लिपटता है,
पत्ती-पत्ती
अनहद स्वर भरता है;
पछवा-सग
बजती कैसी जहरीली धुन,
कानों को वन्द करो।

पलाश

वन-वन में
दहका पलाश रे !

वन के आँगन में
कैसी है आग लगी ?
जिजीविषा जीवन की आज जगी;
लहराती डालों में
जीवन का लास रे !

मस्ती नस-नस में
कैसी यह आज घुली ?
शीतल है हवा, चमकती धूप खुली;
सरिता की लहरों का
दर्पण भी पास रे !

सूने जंगल में
क्यों जलती मशाल है ?
काली छाया पर जीवन यह लाल है;
मुरझाये धौकों में
जीवन की प्यास रे !

दहका है
वन-वन में पलाश रे !

अमलतास

भरी दोपहरी
छाया छहरी
अमलतास ने स्वर्ण बिखेरा।

जितनी गरम लूएँ चलती है
    अमलतास उतना ही हँसता;
जितनी धूप कड़ी पड़ती है
    उतना स्वर्णिम रंग बिखरता;

भरी दोपहरी
धरती हरी
रंग अमलतास पर चढ़ता गहरा।

सन्नाटा है, वियाबानियत
    लोग छुपे परदों के भीतर;
धूल, बवण्डर बीच खड़ा हो
    अमलतास झरता है झर-झर;

भरी दोपहरी
काल-चक्र की गति भी ठहरी
अमलतास ने मुझको टेरा।

बदली की दोपहरी

ढूहों में गूंज उठे
धारा की कलकल;
तपती दोपहरी मे छाये है बादल।

मौसम ने पल भर में
रुख पलटा है ऐसा,
लपटों में चन्दन का
उत्स फूटा है कैसा ?
पत्तों में छुपी गोरैया ने
पंख फड़फड़ाये,
पेड़ तले खड़े बछड़े
बार-बार रंभाये;

गंधित पवन बुलाये
आँगन में चल-चल,
जलती दोपहरी में
छाये हैं बादल।

सूरज का रोप मिटा
तीखी है धूप नही,

झूम रहे नीम, सिरस
चलते है तीर नहीं,
बदली से चुपके से
झरी शीतल फुहारें,
सिहर उठे तृण, पौधे
मुरझाये सारे;

कुम्हलाये अन्तस में
जाग रही हलचल;
तपती दोपहरी में
आये है बादल।

मेघ

बरसो मेघ।
उमड़-उमड़ कर बरसो मेघ।

छप्पर-छप्पर काले हैं,
गली-गली मे नाले है,
कीचड़ धो दो काली-काली,
आँगन-आँगन
बरसो मेघ।

खिडकी-खिड़की बन्द सभी,
द्वार-द्वार है रुद्ध सभी,
बौछारों से उन्हें खोल दो
गेह-गेह पर
बरसो मेघ।

धुल-धुल कपड़े अकड़े है,
क्रीज-क्रीज में जकड़े है,
जकड़ खोल दो उनके तन की
मनुज-मनुज पर
बरसो मेघ।

मन-मन पर अवसाद घिरा,
कुण्ठा ने की बन्द गिरा,
गाँठ खोल दो मानव मन की
मन के द्वारे

बरसो मेघ।

घुमड-घुमड कर

गरज-गरज कर

बरसो मेघ।

सावन की सुबह

सावन की एक सुबह
दिनों बाद
उजली धूप खिली।

बादल छाये
अँधेरा रहा,
घुटन का भार चुपचाप सहा,
सूरज को धन्यवाद
रोशनी से नजरें फिर मिली।

आँगन हँसा
खिड़कियाँ चमकी,
पंख खोल गौरैया फुदकी;
मन्द हवा के झोंके
मन की डाल-डाल हिली।

आकाश खुला
बादल बिखरे,
ऊँचे पहाड़ धुल-धुल निखरे,
पत्तों की मर्मर में
मीठी-मीठी रागिनी घुली।

वर्षा के बाद शहर

एक और शहर
उभर आया है सड़क के नीचे
ऊपर से उडता जाता हूँ मैं।

ऊर्ध्व-मूल वृक्ष की शाखाएँ
फैली सड़क के नीचे,
बिजली के तारों की
एक लम्बी-यात्रा सडक के नीचे;

एक और आकाश
फैल गया है सड़क के नीचे
ऊपर से नापता जाता हूँ मैं।

बकरियों का एक झुण्ड
उलटा-लटका जाता है;
कौओं का एक झुण्ड
तारों पर लटक चिल्लाता है;
एक इमारत की खिड़कियाँ
झाँकती है सड़क के नीचे
ऊपर से निगाह जोड़े जाता हूँ मैं।

फूलों का गमला लिये
एक आदमी
नीचे से गुजर गया,
हर नुक्कड़ पर फूल खोजता
ऊपर मैं सिहर गया;
हाय. शहर को रौंद
एक भारी ट्रक भाग गया
सड़क के नीचे
ऊपर से विवश देखता जाता हूँ मैं।

अंकुर का गीत

धरती की छाती चीर
निकला है अंकुर एक
हथेलियों से सहला
    शीतल तुम राह दो।

कल
आनी है हरियाली जो
उसका यह दूत है,
मिट्टी को तोड़ निकला
जीवन-शक्ति अकूत है;
धूप के तप्त तीर
चिकने रेशे जलायें नहीं
हथेलियाँ पसार उसे
    शीतल तुम छाँह दो।

दुनिया में
    आँधी झोंके है,
जहर-भरी साँस है, घात है,
वासन्ती फलों के सपने की
यह नन्ही शुरुआत है;

फूलों की पंखड़ियों को
आँधी बिखरे नहीं
हथेलियाँ फैलाकर
रक्षा की बाँह दो।

आज जो छोटा है
निर्बल है
कल बढ़कर मजबूत होगा,
अपने चौड़े पत्तों से
धूप-थके लोगो को छाँह देगा;
आज उसे जरूरत है
एक नरम सहारे की,
धरती को सींच-सींच
बढ़ने की चाह दो।

निकला है अंकुर एक
धरती की छाती चीर।

शरद की रात

शरद की अँधेरी रात;
खुले मैदान में सीधे लेट
आकाश देखना।

कितने लम्बे फर्श में
चमकीली सीपियाँ जड़ी;
टूटा है दर्पण कोई बड़ा
काली मिट्टी में किरचें गड़ी;
शरद की अँधेरी रात;
खुले मैदान में चुपचाप बैठे
इधर-उधर दृष्टि फेरना।

लम्बे-मोटे ये भूत
खामोश खड़े चारों तरफ;
दूर गाँव की रोशनियाँ
अँधियारे के बीच जलते हरफ;
शरद की अँधेरी रात
ढलान पर दौड़ते झरने का
रक्षा को टेरना।

उजली रात

सब तरफ तो मौन है
आवाज देता कौन है ?

शारदीया यामिनी
चुपचाप पीती चाँदनी;
आवरण सारे उतारे रूपसी;
दिन नही है
पर चमकती धूप सी;

शोर दिन का
जा कही पर छुप गया है;
रथ समय का
कुछ क्षणों को रुक गया है;
दीर्घ-पर्वत श्रेणियां है मौन
धौक वन भी मौन है,
आवाज देता कौन है ?

कौन कहता है उठो अब,
चाँदनी में जा घुलो अब,
वक्त है ना सोचने का,
छांह नीचे बैठने का,

चाँदनी में घुल रहे सब
श्रृंग, तरु, चट्टान है,
सिन्धु में अब बोझ सारे
फेंकना आसान है,

सब तरफ को मौन है,
सित समुद्र मे डूबने को
यह बुलाता कौन है ?

कोहरा

धुन्ध-धुन्ध-धुन्ध
सब कहीं
सब तरफ धुन्ध है।

दीखता है हर जगह
सिर्फ धुआँ-धुआँ-धुआँ,
न पेड़, न पहाड़ है
न पक्षी, न ताल है,
सुब-सुबह ही हाय ! आज क्या हुआ ?

अल-सुबह गूँजते थे गीत जो
आज बन्द है,
हर तरफ, सब जगह धुन्ध है।

आसमान का पता नही
पता नही है धूप का,
न रास्तों में शोर है
निस्तब्धता हर ओर है
किस जगह से आ गया
भूत यह अजीब रूप का,
जिस तरफ निगाह उठी
दृष्टि अंध है,
हर जगह, दिशा-दिशा धुन्ध है।

हेमन्ती दोपहर

हेमन्त की दोपहर में
खुले आकाश नीचे बढ़ते जाना।

हरे-पीले खेत
चुपके पास से गुजरते है,
नये-नये बिम्ब
दर्पण में रच-रच उभरते है,
ठण्डी हवा के साथ
धरती से ऊपर उठते जाना।

अरहर के खेतों में
तीतर का झुण्ड एक छुपता है;
नाला मिला एक
जरा बैठने को कहता है;
नाले के पास बैठ
भूली पंक्ति को दोहराना।

मटरों में फली आयी
तोते पेड़ों पर बैठे,
पपीते में फल आये
फूल-फूल एँठे,
क्षण-क्षण में कुछ छूटना
कुछ से जुड़ते जाना
हेमन्ती दोपहर में।

आवारा हवा

जाड़े की दोपहर में
गरम धूप सेकती
सन्-सन्-सन् बहती रही हवा।

दूर-दूर-दूर
धूल भरी निस्तब्ध पगडण्डियो पर,
दूर-दूर-दूर
आदिम पहाडो की सँकरी घाटियों में,
दूर-दूर-दूर
भरे-भरे खेतों की भूलभुलैया में,
सन्-सन्-सन् दौड़ती रही हवा
जाड़े की दोपहर में।

टकराती रही अनगढ पत्थरों से
पीपल के पत्ते हिलाती रही,
वट की उलझी जटाओं में घूमी
सिरस के पातड़ों का
बाजा बजाती रही;

कही बकरियों के चरते झुण्ड को सरसराया,
कही ढेले की टेक बैठे ग्वाले को

ठण्ड हाथों सहला कँपकँपाया;
कहीं अमलतास के पत्तों में भरा स्वर
कहीं किसी राह चलती लड़की को छेड़ा
लटों को उड़ाया,

जाड़े की दोपहर में
गरम धूप पीती
आवारा
निरुद्देश्य भटकती रही हवा।

शिशिर की दोपहर

छू-छू कर जाता है मुझको
कहीं दूर का शीत-पवन,
आज शिशिर की दोपहरी में
खोया-खोया मन ।

जाने क्या है हुआ
सभी कुछ खाली-खाली लगता;
शीतल, कोमल परस पवन का
अजब उदासी भरता;

कहीं दूर पर उड़ जाने को
पंख खोलता मन,
आज शिशिर की दोपहरी ।

सब कुछ मेरे पास
शिकायत किसकी कर सकता,
कुछ खो बैठा हूँ मैं
भाव यही क्यों उठता ?
फिर लहराये आंचल धानी
आज चाहता मन,
मधुर शिशिर की दोपहरी में ।

डाल-डाल से टूट-टूट कर
पीले पत्ते झड़ते;
कहीं शून्य में जाने कितने
मेरे भाव भटकते,
इनको गोद मिले फिर प्यारी
आज कसकता मन
पीत शिशिर की दोहहरी में
खोया-खोया मन।

शिशिर-यात्रा

पेड़ से छूट पत्ता
कितनी दूर तक उड़ा।
कचनारी कलियों से खिल
पहले मन्द-मन्द हँसा;
जी उचटा तो उड़कर
सेमल डाल जा फँसा;

हवा-संग उडता पत्ता
किस-किस दृश्य से जुड़ा।
धरती को नीचे छोड़
ऊपर फुनगी तक चढ़ा;
घाटियों में गहरे उतर
धार संग-संग बहा;

लहरों की नाव बैठ
किन-किन राह में मुड़ा,
पेड़ से छूट पत्ता।

कोई हवा

कल कोई हवा आयेगी ।
चुपचाप सब बदल जायेगी ।।
मैं तो पलटता रहूँगा
अखबारों के पन्ने;
सरसों के खेतों को वह
पीली चादर उढ़ा जायेगी ।

तुम बैठी रहना
होठों को कस, मुह तिरछा कर;
धीरे से आ वह
कोई लट उडा जायेगी ।

सौन्दर्य पर परिचर्चाएँ
चलती रहेंगी शहरों में;
गुलमोहर की शाखा मे
वह लपटें सुलगा जायेगी ।
कल कोई हवा आयेगी ।।

बहुत दिनों के बाद

बहुत दिनों के बाद
आज फिर हवा चली है फागुन की,
मेरे कुरते का छोर
तुम्हारी साड़ी का पल्ला
साथ-साथ लहराता है;
मन अनजान दिशाओं में
        बह-बह जाता है
बहुत दिनों के बाद।

बहुत दिनों के बाद
आज फिर खुला आसमान है
उजली धूप चमकती है;
अँधियारे कमरे की बन्दी
मेरी अनुभूति पंख लगाकर उड़ती है
बहुत दिनों के बाद।

बहुत दिनों के बाद
आज फिर फूला पलाश है,
सिरस डाल से गन्धों के झरने झरते हैं;
अमलतास के पत्तों से मेरे शब्द
        अर्थ खोजते,
धरती से आसमान तक उड़ते हैं
बहुत दिनों के बाद।

प्रेम

प्यार
मटमैले बादलो के जाने के बाद,
धुले-नीले आसमान में
सूरज चमकता हो,
बादल का कोई टुकड़ा न हो
खुली धूप मे सब कुछ दमकता हो।
प्यार
धरती की पंक सूखने के बाद;
किसी सूखी झाड़ी में
नये हरे पत्ते निकले हों,
हवा संग झूमते
शरद की धूप से उजले हों।
प्यार
बादलो की उमस बीतने के बाद
दौडती शीतल हवा में
आँचल फहराता हो,
चट्टानो को तोड़ झरना
अपने को बिखराता हो।
प्यार
शरद की धूप में बहता झरना;
प्यार
कुछ न कहना, चुप हो रहना।

उचटा मन

जाने क्या है बात
सुबह से उचटा-उचटा मन।
सुबह से भटका-भटका मन।

दृष्टि दौड़ती सभी जगह पर
कहीं नहीं रुक पाती;
सुन्दर चेहरों के ढलान पर
फिसल-फिसल है जाती;
पता नहीं क्या धन खोया है
खाली-खाली मन।

बहुत तरह के स्वर आते हैं
टकरा कर फिर जाते;
मन की गहरी घाटी भीतर
कोई उतर न पाते;
किस अनजाने मधुर शब्द को
आकुल-आकुल मन।

छुई-मुई के कितने पत्ते
गिरते, उड़ते, पड़ते;
स्वप्न जाल के धागे कितने

गुँथते, जुड़ते, खुलते;
जाने क्या कुछ छिना आज है
लुटा-लुटा सा मन

जाने क्या है बात
सुबह से भटका-भटका मन।

दोपहर

वसन्त की दोपहर
धूप की चील
पंख खोल उड़ती है।

फुसफुसाती खामोशी कहती
बीत गयी बातें;
थप-थप की आहट से जगती
सोई पड़ी रातें;
सोई झील पर
सन्नाटे में
पीपल की डाल हिलती है।

पहाड़ों की सीढ़ी-सीढ़ी
चुप चढ़ता है मन;
झरनों की धार बहता
डूबा-डूबा मन;

किन नयी घाटियों में
अनजानी पगडण्डी यह
मुड़ती है।

पत्तों के बीच कोई कूक
गूँज उठी गहरी;
पेड़ तले सोई छोटी छाँह
काँप उठी हहरी;

गिलहरी एक
नंगी शाखों पर
दौड़ लपक चढ़ती है।
धूप की चील
पख खोल उड़ती है
वसन्त की दोपहर में।

गुलमोहर

दोपहरी में
गुलमोहर का पेड़
खड़ा जलता है।

आग लगी गुलमोहर की
जलती है झील;
जलती है झील
कहीं चीखती है चील;
दोपहरी में
गुलमोहर का पेड़
कहीं फँसता है।

उजली यह धूप
चुप-चुप देती है चोट;
देती है चोट
बचूँ गुलमोहर की ओट;

दोपहरी में
गुलमोहर का पेड़
मधुर लगता है।
लपटों के बीच
गुलमोहर का पेड़
बहुत हँसता है।

गन्ध भरे तीर

मारो ना
गन्ध भरी यादों के तीर मुझे।

रोम-रोम कँप जाता है,
मन तक बिंध जाता है;
मारो ना
गन्ध भरी बातों के तीर मुझे।

दुर्बल हूँ
तैर नही पाता हूँ,
अमलतासी ज्वारों में
डूब-डूब जाता हूँ;
भेजो ना
गन्ध भरी यादों के कूल मुझे।

वासन्ती तीरों से
नीम-बौर झरते है,
मन-पट पर कितने ही
अतीत-पल अँकते है;
सह नही पाता हूँ
देना ना वासन्ती पीर मुझे।

शाम का गीत

कुछ क्षण उस बेला को दो
चुप न रहूँ, कुछ कह पाऊँ।

जब पहाड़ के पीछे जा
चुपके से सूरज छुपाता है;
घने वृक्ष की शाखों पर
पत्ते-पत्ते को सहलाता
अँधियारा घुप्प उतरता है;

कुछ स्वर उस बेला को दो
अंधकार में डूब न जाऊँ।

कोटर बैठा पक्षी शावक
आतुर गर्दन उचका-उचका
सूना नभ जब तकता है;
शोर लौटती चिड़ियों का
कही अँधेरा ग्रसता है;

कुछ स्वर उस बेला को दो

खोये शब्दों को दोहराऊँ।

मन की गहरी पर्तों में जब
कोई आग सुलगती है;
खुद को ही अनचीन्ही हो
अनजान दिशाओं मे
अनुभूति बिखर भटकती है;

कुछ स्वर उस वेला को दो
अनुभूति को
टिका कही पर समझाऊँ;
चुप न रहूँ, कुछ कह पाऊँ।

रात

चैत की रात
चांदनी में एक पेड़ हिलता है।

सन्नाटे मे
सडक पर कोई नही चलता है;
अकेला सिर्फ
एक किनारे लैम्प-पोस्ट जगता है;
दिन भर की तपन बाद
कही एक फूल खिलता है
चांदनी में;

धीरे से पीठ छू
कोई भाग जाती है;
अनजाने में
बँधी किताब खुल जाती है;
पढ़े पन्ने को
पलटने में बड़ा सुख मिलता है
चांदनी में

चुपके से आ
एक किरण पास बैठ जाता है;
ठण्डी अंगुलियां
बालों में फेर सहलाती है;
शीतल-परस से चैन
आह! पुरा घाव छिलता है
चांदनी मे।

साथ

कचनारो में रंग भरे।

विजन राहों में
सांझ अब खिन्न नही घूमता;
आंचल तुम्हारा
मेरे साथ-साथ झूमता;

दूरी के पात झरे।

दीवारों के ऊपर से
डालें हैं झांकती;
रीते भाजन से मन में
स्मृतियां है आंकती

सपने हैं आज रे।

दूर बहुत मुझसे हो
मिलने का प्रश्न क्या ?
बैंगनियां साड़ी पहने
साथ नही आज क्या ?

दुख के दिन आज टरे।



जुगमन्दिर तायल

16 नवम्बर 1936 ई० को अलवर मे जन्म

एम ए. (हिन्दी) और साहित्यरत्न

1958 से अलवर के राजकीय महाविद्यालय में प्राध्यापक के रूप में कार्य।

प्रमुख प्रकाशित कृतियां—धूप भरी सुबह, सूरज सब देखता है, जगल से गुजरते हुए (सभी काव्य-सकलन), किस्सा पाँचवे दरवेश का (व्यंग्य-संकलन), आधुनिक हिन्दी साहित्य के विकास की रूपरेखा (इतिहास—आलोचना) और प्रस्तुत कृति 'दर्पण के बिम्ब' (नवगीत-संकलन)।

सम्पादन—कविता 1961, अनियतकालीन काव्य पत्रिका 'शब्द', राजस्थान साहित्य अकादमी की मासिक पत्रिका 'मधुमति' और राजस्थान के शिक्षक कवियों का काव्य-सकलन 'समय के सन्दर्भ'।

सम्मान—राजस्थान साहित्य अकादमी की सचालिका (तीन वर्ष) और सरस्वती सभा (छ वर्ष) के सदस्य रहे। राजस्थान प्रगतिशील लेखक सघ के अध्यक्ष-मंडल के सदस्य। राष्ट्रीय प्रगतिशील लेखक महासघ की राष्ट्रीय समिति के सदस्य। राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा विशिष्ट साहित्यकार के रूप में सम्मानित। रूसी, अग्रेजी, मराठी, गुजराती कश्मीरी, मलयालम आदि भाषाओं में कुछ कविताओं का अनुवाद।